International Journal of Sanskrit Research 2021; 7(5): 71-72

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2021; 7(5): 71-72
© 2021 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 04-07-2021
Accepted: 06-08-2021

डॉ. निशा गोयल
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
कालिन्दी महाविद्यालय, दिल्ली
विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
डॉ. निशा गोयल
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
कालिन्दी महाविद्यालय, दिल्ली
विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

वर्तमान शिक्षा में वैदिक मूल्यों की उपादेयता

डॉ. निशा गोयल

DOI: https://doi.org/10.22271/23947519.2021.v7.i5b.1471

सारांश
प्राचीन काल से ही समाज में शिक्षा का व्यापक महत्त्व रहा है। समाज का विकास और उसका पतन शिक्षा की व्यवस्था पर ही आधारित रहता है। शिक्षा की समुचित व्यवस्था पर ही बौद्धिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक प्रगति संभव है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली भौतिकता के विकास एवं उन्नति पर आधारित है। सिर्फ पद, प्रतिष्ठा, जीविका, क्षणिक सुख और अन्त में मृत्यु ही ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट रचना का परम लक्ष्य नहीं हो सकता, बल्कि जिसे प्राप्त कर लेने के बाद कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता, वही मानवता का परम लक्ष्य है। अतएव आज आवश्यकता है कि भौतिकता की शिक्षा में वैदिक मूल्यों का भी समावेश किया जाए, ताकि व्यक्ति मानवता को न भूले, वह अपने अधिकार एवं कर्तव्यों की सीमा निर्धारित कर सके, भोग एवं योग दोनों व्यक्ति में समाहित हों।

कूटशब्दः शिक्षा, वेद, उपनिषद्

प्रस्तावना
प्राचीन काल से ही समाज में शिक्षा का व्यापक महत्त्व रहा है। समाज का विकास और उसका पतन शिक्षा की व्यवस्था पर ही आधारित रहता है। शिक्षा की समुचित व्यवस्था पर ही बौद्धिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक प्रगति संभव है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि किसी भी देश की आर्थिक समृद्धि, सामाजिक चेतना, राजनीतिक एकता व विकास एवं जीवन स्तर उच्चता को प्राप्त करने के लिए उत्तम शिक्षा नितान्त आवश्यक है।

शिक्षा शब्द की उत्पत्ति शिक्ष् धातु से हुई है, जिसका अर्थ है– विद्या को प्राप्त करना। ए. एस. अल्तेकर के अनुसार शिक्षा से तात्पर्य जीवन की उस विशेष अवस्था से था, जिस अवधि में मनुष्य अपने गुरु के पास अथवा शिक्षा संस्थान में रहकर अपनी उन्नति के लिए आवश्यक प्रशिक्षण और निर्देश प्राप्त करता था, फिर उसके पश्चात् गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर अपनी जीविका के उपार्जन में लग जाता था।[1]

वर्तमान शिक्षा प्रणाली भौतिकता के विकास एवं उन्नति पर आधारित है। सिर्फ पद, प्रतिष्ठा, जीविका, क्षणिक सुख और अन्त में मृत्यु ही ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट रचना का परम लक्ष्य नहीं हो सकता, बल्कि जिसे प्राप्त कर लेने के बाद कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता, वही मानवता का परम लक्ष्य है। किन्तु आज मानव तृष्णा, आकांक्षा और वासना के जाल में फंस चुका है। उसे अपनी परम सत्ता सच्चिदानन्दस्वरूप की तनिक भी भनक नहीं है। चारों तरफ लूट, करुण–क्रन्दन और हाहाकार मचा हुआ है। कहीं भी तृप्ति, सन्तोष एवं पूर्णता नहीं है। इन सबका मूल कारण हमारी आधुनिक शिक्षा पद्धति है। यह आधुनिक शिक्षा नीति की अपूर्णता का ही परिणाम है, जो हमें आधी बात बताकर, लक्ष्य की तरफ आधी दूर बढाकर छोड देती है। यह इन्द्रियों की उपासना बताकर आत्मोपासना बताना भूल जाती है।

अतएव आज आवश्यकता है कि भौतिकता की शिक्षा में वैदिक मूल्यों का भी समावेश किया जाए, ताकि व्यक्ति मानवता को न भूले, वह अपने अधिकार एवं कर्तव्यों की सीमा निर्धारित कर सके, भोग एवं योग दोनों व्यक्ति में समाहित हों। उपनिषदों में भी भोग को अस्वीकार नहीं किया गया है किन्तु त्यागपूर्वक संयमित भोग ही श्रेयस्कर माना गया है–

ईषावास्यमिदं सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।[2]

शिक्षा के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि स्वाध्याय और प्रवचन करने से मनुष्य का चित्त एकाग्र होता है, वह स्वतन्त्र बनता है, नित्य उसे धन प्राप्त होता है, वह सुख से सोता है, उसका इन्द्रियों पर संयम होता है, उसकी प्रज्ञा बढती है, उसे यश मिलता है और वह स्वयं को संसार के अभ्युदय में लगा देता है।[3]

प्राचीन भारतीय आचार्यों ने शिक्षा का अर्थ केवल पुस्तकीय ज्ञान ही नहीं माना है। उनके अनुसार विभिन्न शास्त्रों का ज्ञान रखने पर भी यदि व्यक्ति में अन्तर्ज्योति का विकास नहीं हुआ, तो उस शिक्षा या ज्ञान का कोई महत्त्व नहीं है। वास्तव में क्रियावान् मनुष्य ही सही अर्थों में शिक्षित है–

> शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्
> सुचिन्तितं चौषधमातुराणां न नाममात्रेण करोत्यरोगम्।।[4]

इस प्रकार शिक्षा व्यक्ति को शास्त्रों के ज्ञान के साथ–साथ अन्तर्ज्योति, अन्तर्दृष्टि तथा संस्कार प्रदान करती है, जिससे व्यक्ति आत्मनिर्भर बनकर समाज में सम्मानित जीवन व्यतीत करता है।

वैदिक काल में हमारे साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों[5] ने ''आ नो भद्रा क्रतवो यन्तु विष्वतः''[6] मन्त्र के द्वारा विश्वकल्याण की कामना तथा ''स्वस्तिपन्थानमनुचरेम''[7] मन्त्र के द्वारा कल्याण के पथ पर चलने तथा अशिव से दूर रहने की कामना हजारों वर्ष पूर्व की थी। वैदिक ऋषियों ने जीवन के महत्त्व और उसकी उपयोगिता पर गहराई से विचार किया था, क्योंकि वे एक ऐसी दुनिया का निर्माण करना चाहते थे, जो उनके लिए तो मंगलमय रहे ही, आने वाली पीढियों के लिए भी मंगलकारक हो, शिव और भय से रहित हो। जीवन वहीं भयत्रस्त होता है, जहाँ हमारे विचार संकीर्ण और हेय होते हैं, भय से हीनता का संचार होता है और जीवन की निर्मलता को वह दूषित कर देता है, अतः ''अभयं वो अभयं नोऽस्तु''[8] अपने आप में महत्त्वपूर्ण घोषणा है।

तैत्तिरीयोपनिषद् में मानव को शिक्षा के चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया गया है–

> ''सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुषलान्न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यान्न प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव।
> यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि त्वया सेवितव्यानि नो इतराणि।
> यान्यस्माकं सुचरितानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि।।''[9]

अर्थात् सत्य भाषण करो, धर्म का आचरण करो, स्वाध्याय से कभी प्रमाद मत करो, सत्य और धर्म पालन में कभी आलस्य मत करो, माता, पिता, आचार्य और अतिथि एवं जो सत्य का उपदेश करने वाले हैं, उनकी सेवा से प्रमाद मत करो, श्रेष्ठ कर्मों का अनुकरण करो, निन्दित कर्मों का नहीं, हमारे जो सदाचार हैं, तुम्हें उन्हीं को अपनाना चाहिए, अन्य को नहीं।

कठोपनिषद् के शान्ति मन्त्र में गुरु अपने साथ–साथ शिष्य के भी पालन–पोषण और रक्षा की कामना करता है–

> ऊँ सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै।
> तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।।
> ऊँ शान्तिः शान्तिः शान्तिः[10]

इसी प्रकार ऋग्वेद के संज्ञान सूक्त में भी सभी से समाज में एक साथ मिल–जुलकर काम करने की बात कही गयी है–

> संगच्छध्वम् संवदध्वम् सं वो मनांसि जानताम्।
> देवाभागं यथापूर्वे संजानाना उपासते।।[11]

बृहदारण्यकोपनिषद् में भी सभी के सुखी एवं निरोगी होने की कामना की गयी है–

> सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
> सर्वे भद्राणि पष्यन्तु मा कष्चिद्दुःखभाग्भवेत्।।[12]

इसी प्रकार वेदों में ब्रह्मचर्य की भी महिमा का बखान किया गया है कि ब्रह्मचर्य की तपस्या से ही राजा राष्ट्र की रक्षा करता है। आचार्य स्वयं ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए उसी शिष्य की कामना करता है, जो ब्रह्मचारी हो–

> ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति।
> आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिषमिच्छते।।[13]

विद्यार्थी सदा यह स्मरण रखते थे कि वे ही राष्ट्रीय संस्कृति के रक्षक और मार्गदर्शक हैं और उनके सम्यक् कर्त्तव्य पालन से ही इसकी उन्नति सम्भव है। वे इस बात से पूर्णतः अवगत थे कि जो सत्य का आचरण करने वाला है, वही मनुष्य सदा विजय और सुख प्राप्त करता है और जो मिथ्याचरण अर्थात् असत्य कर्मों को करने वाला है, वह सदा पराजय और दुःख को प्राप्त करता है–

> सत्यमेव जयते नानृतम् सत्येन पन्था विततो देवयानः।
> येनाक्रमन्त्यृषयो आप्तकामा यत्रा तत्सव्यस्य परमं निधानम्।।[14]

इस प्रकार भारतीय संस्कृति में अनेक तत्त्व विद्यमान हैं, जिनको अपनाकर हम अपने वर्तमान और भविष्य दोनों को सुन्दर बना सकते हैं। वैदिक शिक्षाएँ शाश्वत हैं। इन शिक्षाओं को हमें अपने जीवन में अवश्य स्थान प्रदान करना चाहिए, क्योंकि ये सार्वकालिक और सार्वभौमिक प्रासंगिकता से युक्त हैं।

सन्दर्भ सूची

1. ए. एस. अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, पृ06
2. ईशोपनिषद् 1
3. शतपथ ब्राह्मण 11.5.7.1–5
4. सुभाषितरत्नभण्डार, पृ040
5. साक्षात्कृतधर्माणः ऋषयो बभूवुः। निरुक्त 1.20
6. ऋग्वेद 1.89
7. वही 5.51.15
8. ऐतरेय आ0 7.12.8
9. तैत्तिरीयोपनिषद् 11.1–2
10. कठोपनिषद्, शान्ति मन्त्र
11. ऋग्वेद, संज्ञान सूक्त
12. बृहदारण्यकोपनिषद्
13. अथर्ववेद 11.15.24
14. मुण्डकोपनिषद् 1.6